



## National Journal of Hindi & Sanskrit Research

### ISSN:

NJHSR 2015; 1(1): 01-05

© 2015 NJHSR

www.sanskritarticle.com

Received: 21-04-2015

Accepted: 02-07-2015

### डॉ.आदित्य आंगिरस

Vishveshvaranand Vishwa  
Bandhu Institute of Sanskrit  
and Indological Studies  
PanjabUniversity Hoshiarpur-  
146001, Punjab.

## अर्थ परिवर्तन की प्रक्रिया: भारतीय परिप्रेक्ष्य

### डॉ.आदित्य आंगिरस

पूरे विश्व में लगभग 3000 के आसपास भाषाएँ विद्यमान हैं जो भाषाशास्त्रीय आधार पर भिन्न-भिन्न समूहों में बांटी जा सकती हैं। प्रत्येक भाषा का ढांचाएँ बोलने के शब्दएँ वाक्य विन्यास आदि सभी कुछ भिन्न हैं और एक दूसरे से कम ही मेल खाते हैं। परन्तु यह बात अवश्यमेव ही द्रष्टव्य है कि भाषा के शब्द भाषा के प्रयोग के समय कई बार एक ही अर्थ को बताते हैं तो कई बार परिस्थिति प्रतिकूल होने पर उसी बात के अर्थ को भिन्न परिस्थिति के अनुरूप भी बताते हैं और कहने का अर्थ भी परिस्थिति के अनुसार अनुकूल ही निकलता है जो अपने मूलार्थ से नितान्त ही भिन्न होता है। अर्थ परिवर्तन की प्रक्रिया पर बात करने से पूर्व यह बताना यहां एक आवश्यकता जान पड़ती है कि प्रत्येक शब्द के दो अथवा दो से अधिक अर्थ हो सकते हैं अथवा यह कहें कि प्रत्येक शब्द का एक मुख्यार्थ होता है और उसी के साथ उसका एक गौणार्थ भी उसी शब्द के साथ जुड़ा होता है जो हमें परिस्थितवश ही पता लगता है। यहां यह देखना यह है कि वह मुख्यार्थ और गौणार्थ में कहां ऐसी समानता होती है जो एक ही शब्द को भिन्न भिन्न सन्दर्भों में प्रतिपादित करती है।

यह तो स्पष्ट ही है कि अर्थ का शब्द के साथ संबंध सहज ही होता है चाहे वह किसी भी दिशा में हो। न्याय दर्शन में यही तत्व शक्ति के नाम से अभिहित किया जाता है। शब्द बोध भी शक्ति द्वारा ही संभव है। इसी शक्ति को न्याय दर्शन में वृत्तिएँ व्यापार अभिधा अथवा संकेत आदि के नामों से अभिहित किया जाता रहा है। गदाधर भट्टाचार्य ने इसी तथ्य को प्रमुख रखते हुए शक्तिवाद में "संकेतो लक्षणाचार्थे पदवृत्ति" कहा है।

प्राचीन न्याय दर्शन के अनुसार शब्द शक्ति केवल व्यक्तिएँ आकृति एवं जाति को नहीं जानते हैं अपितु उक्त सिद्धान्त का खण्डन करते हुए शब्द के अर्थ को व्यक्तिएँ जातिएँ आकृति होने को प्रधानता देते हैं। इनके अनुसार एक अर्थ की प्रधान और बाकी दो को गुण माना है जिसके माध्यम से "गौ" आदि शब्दों को लक्षित किया जाता रहा है। इसके अनुसार कहीं व्यक्ति की प्रधानता होती है तो कहीं आकृति की। कहने का अर्थ है कि एक गुण के प्रधान होने कारण बाकी के गौण हो जाते हैं। जैसे कि कहा भी गया है

"यदाहि भेद विवक्षा विशेषगतिश्चएतदा व्यक्ति प्रधान अंगतुजात्याकृति।  
यदा तु भेदो विवक्षितः सामान्य गतिश्चए तदा जाति प्रधानम् अंगतु व्यक्त्या॥"<sup>1</sup>

अपि च:

अश्रयन्त इत्यर्था पदार्थास्तिस्रोऽपि व्यक्त्याकृति जातयः। पदने स्मर्यमाणत्वात् पदार्थाः।

### Correspondence:

### डॉ.आदित्य आंगिरस

Vishveshvaranand Vishwa  
Bandhu Institute of Sanskrit  
and Indological Studies  
PanjabUniversity Hoshiarpur-  
146001, Punjab.

### न पुनरासामान्यतया। सर्वा सामेव पदेन स्मर्यमाणत्वस्य सामानत्वात्॥<sup>2</sup>

नवीन एवं प्राचीन भाषा तात्त्विकों ने इस संबद्ध में विभिन्न प्रकार से अपनी मान्यताएँ प्रकट की हैं। इस संबद्ध में भारतीय भाषा तात्त्विकों की मीमांसा पर स्वयं को केंद्रित कारना ही यहां मेरा लक्ष्य है पर इसमें भी पूर्व यहां शब्द का अर्थ से संबंध पर विवेचन करना एक आवश्यकता जान पड़ती है।

न्याय दर्शन के अनुसार शक्ति से युक्त शब्द को पद कहा गया है और इस शब्द से संकेत होने वाले अर्थ ;वस्तु द्वको पदार्थ कहा जाता है। पद और पदार्थ के संबंध ज्ञान से ही शब्द का बोध होता है और पद से अर्थ का बोध होता है। किन्तु यहां यह स्पष्ट करना उचित ही होगा कि सभी शब्दों का अर्थ नहीं होता या इस को मैं इस प्रकार कह सकता हूँ कि सभी शब्द प्रदार्थ का बोध नहीं करवा सकते हैं। नियत पदों से नियत अर्थ का ही बोध होता है। इसका स्पष्ट सा ही एक कारण है कि प्रत्येक पद और अर्थ के मध्यसम्बंध होता है जो अपनी बुद्धि के अनुसार हम पद और अर्थ को ग्रहण करते हैं। परन्तु यहां यह स्पष्ट करना उचित है कि तर्क सभी स्थानों पर उचित नहीं होता क्योंकि बुद्धि-भेद और स्थान भेद के कारण ही नये नये अर्थ से सम्बंध बनते और बिगडते दिखाई पड़ते हैं। यही वह मूल कारण है जिसके आधार पारपद के नियत अर्थ का बोध न हो कर किसी अन्य अर्थ का भी पता चलता है। वैयाकरणों के अनुसार शब्द और अर्थ का तादात्म्य संबंध स्वतः ही सिद्ध है। उनके अनुसार अर्थ शब्द शब्द से भिन्न भी होता है और अभिन्न भी और जो अर्थ जिस शब्द से भिन्नाभिन्न अवस्था में हाते हैं उन शब्दों से उन्ही अर्थों का बोध होता है।

यह कहना यहां उचित ही होगा कि सभी अर्थों का सभी शब्दों से भिन्नाभिन्न नहीं होते अर्थात् सभी अर्थों और शब्दों में तादात्म्य संबंध स्थापित नहीं होता।

इसीलिये सभी शब्दों से अर्थ का बोध नहीं होता। महाकवि कालिदास ने "वागर्थविव सम्पृक्तौ" और तुलसीदास ने गिरा अर्थ "जलविचि सम" कह कर इसी और इशारा किया कि शब्द और अर्थ में तादात्म्य संबंध होता है। दूसरी ओर मीमांसक शब्द और अर्थ के मध्य वाच्य-वाचक भाव का संबंध मानते हैं। इसी संबंध को दूसरे शब्दों में वाच्यताएवाचकताए अभिधा आदि के नाम से भी अभिहित किया जाता रहा है। इसके अनुसार शब्द को वाचक और अर्थ को कोवाच्य कहा जाता है अर्थात् जो शब्द जिस अर्थ का वाचक होता है वह उसी का बोध करवाता है। उक्त के अनुसार यह संबंध सभी शब्दों में होता है। अतः सभी पदों से सभी अर्थों का बोध न हो कर नियत अर्थों का ही ज्ञान होता है। परन्तु न्याय दर्शन के अनुसार शब्द और अर्थ का संबंध संकेत रूप में होता है। यहा संकेत का अर्थ है एक शब्द से किसी विशिष्ट वस्तु की ओर संकेत करना। यह एक मानसिक एवं रूढ प्रक्रिया है जो एक विशिष्ट अर्थ को एक विशिष्ट शब्द से जोड़ कर चलने की पक्षपाती रही है और इसी के अनुसार पद का सभी अर्थों में बोध न होकर उस शब्द की विशिष्टता की ओर इंगित करता है। यहां यह स्पष्ट करना उचित ही होगा कि उक्त मतानुसार संकेत का कारण केवल ईश्वरेच्छा को स्वीकृत किया गया है परन्तु दूसरी ओर नव्य-

**न्याय दर्शन इसे केवल इच्छा मानता है।<sup>3</sup>**

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि प्रत्येक शब्द के दो अथवा दो से अधिक अर्थ मिलते हैं- मुख्य अर्थ और निगूढार्थ। शब्द के शुद्ध उच्चारण से उसके जिस प्रसिद्ध अर्थ का बोध होता है वह उस शब्द का मूलार्थ अथवा मुख्यार्थ होता है। यह अर्थ लोक संदर्भ में मुख्य अर्थ के नाम से प्रचलित है-

**"शुद्धस्योच्चारणे स्वार्थं प्रसिद्धो यस्य गम्यते।**

**स मुख्य इति विज्ञेयो रूपमात्र निबंधनः॥"<sup>4</sup>**

अर्थात् शुद्ध उच्चारण और अपने अर्थ के लिये प्रसिद्ध जो विशिष्ट शब्द हैं और जिसके बोलने मात्र से ही जो वस्तु सहज रूप में हमारे सामने स्पष्ट होती है वही उस शब्द का मूल अर्थ अथवा मुख्यार्थ माना जाना चाहिये। कहने का अर्थ यह है कि प्रकरण में प्रयुक्त हो कर जो शब्द प्रकरणानुसार जिस अर्थ का बोध करवाये वही उस शब्द का मुख्यार्थ होता है। यहां यह भी स्पष्ट करना उचित है कि ज बवह प्रकरण में प्रयुक्त होता हुआ अपने रूढार्थ की अपेक्षा किसी अन्य अर्थ को भी द्योतित करता है तो वह उसका गौणार्थ कहा जा सकता है। क्योंकि-

**"यस्त्वन्यस्य प्रयोगेण यत्नादिव नियुज्यते।**

**तमप्रसिद्धं मन्यन्ते गौणार्थाभिबिनम्॥"<sup>5</sup>**

अर्थात् शब्द जिस प्रकरण में प्रयुक्त हो कर अपने जिस अर्थ को प्रकाशित करता है वही उसका निमित्त एवं मुख्य अर्थ अथवा मूलार्थ होता है निमित्ती गौणार्थ होता है स्वर्थे प्रवर्तमानस्य यस्यार्थं योज्यन्वते।

**"निमित्तं तत्र मुख्यं स्याद् निमित्ती गौण इष्यते॥"<sup>6</sup>**

इस मीमांसा से यह बात तो निश्चित रूप से स्पष्ट होती है कि मुख्य अथवा मूलार्थ अथवा प्रधानार्थ की स्थिति में शब्द अपने रूढ अर्थ में ही स्थित रहता है परन्तु साथ ही साथ गौण अर्थ की स्थिति में वही शब्द रूढ शब्द के अर्थ में स्थित न हो कर अन्य अर्थ को भी द्योतित करने वाला बन जाता है।

शब्द का अर्थ के साथ विवेचन करते समय यह प्रश्न आवश्यक रूप से हमारे सामने आता है कि शब्द का रूप क्या है और व्याकरण के अनुसार क्या अर्थ से संबंध रखने वाला शब्द वही है जो बोला और

सुना जाता है? यदि यह वैसा ही है तो यहां यह समस्या उठती है कि अर्थ बूध कैसे होता है और शब्द की सत्ता अर्थ के साथ कैसे जुड़ी हुई है अथवा कैसे हो सकती है। वैयाकरण श्रव्य शब्द के अतिरिक्त एक आन्तरिक एवं बुद्धिस्थ शब्द की सत्ता स्वीकार करते हैं। साफ़ तौर पर कहा जाये तो 'गो' शब्द बोलने पर बुद्धि व्यापार द्वारा 'गो' पशु विशेष का चित्र प्रस्तुत करता है। वस्तुतः यह एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है जिसमें बुद्धि अनुभव शब्द से जुड़ा बोधए समाज द्वारा प्रेरित अथवा कर्म आदि शामिल होते हैं। अर्थ यह है कि बचपन से ही मानवीय मस्तिष्क में कुछ ऐसी व्यवस्था की जाती है कि शब्द का अर्थ अथवा भाव मात्र बोलने अथवा व्यक्त करने से ही उस का चित्र अथवा भाव खड़ा हो जाता है जिसे हम अक्सर रूढार्थ के रूप में जानते हैं। धीरे धीरे विद्याभ्यास एवं लोक सम्पर्क के कारण वही शब्द अपने गौणार्थ को भी प्रकट करना आरंभ कर देता है। परन्तु धीरे धीरे बुद्धि के परिपक्व होने पर एक ऐसी व्यवस्था हमारे सामने आती है जो रूढार्थ एवं गौणार्थ को छोड़ कर किसी अन्य अर्थ को भी प्रकट करना शुरू कर देती है। यह व्यवस्था व्यंजना के क्षेत्र में आती है। परन्तु मेरा यहां यह मन्तव्य नहीं कि शब्द को व्याकरण से जोड़ कर उसका विवेचन किया जाय।

शब्द के ध्वन्यात्मक और वर्णनात्मक रूप में दो भेद किये जाते हैं--

**"शब्दो द्विविधः। द्विविध्यं व्युत्पादयति। ध्वनिश्च वर्णश्चेति।"<sup>7</sup>**

ध्वन्यात्मक शब्द तीन प्रकार के माने जाते हैं

- 1 संयोजन,
- 2 विभागजट,
- 3 शब्दज।

ढोल पीटे जाने के कारण ढोल और हाथ से उत्पन्न शब्द को संयोगज शब्द माना जाता है। इसी प्रकार किसी वस्तु के टूटने पर जो शब्द उत्पन्न होता है वह विभागज शब्द कहलाता है और इसी प्रकार प्रथम शब्द से उत्पन्न हुए शब्द को शब्दज कहा जाता है--

"ध्वन्यात्मक शब्द त्रिविधः। संयोगजो, विभागजः शब्दजश्चेति। तत्राऽऽद्योभेरी दण्ड संयोग निमित्तकारणकाः। तस्यभेर्याकाश संयोगोऽसवाभिकारणम्। एवं हस्तमृदंग संयोगो निमित्त कारणम्। हस्ताकाश संयोगोऽसवाभिकारणम्। वंशाक्रिया जन्यवंशदलद्वय विभागजयो द्वितीयः। तस्य वंशदल द्वयाकाशकाश विभागोऽसमवामिकारनम्शब्दोत्पत्ति देशभारभ्यश्रोत्रदेश पर्यन्तंशब्दधारा जायन्ते तत्राऽऽद्यध्वनि विहाय द्वितीय ध्वनि प्रभृति चरम ध्वनि

**प्रभृति ध्वनि पर्यन्ताः ध्वन्यात्मका शब्दा शब्दजाः।**

**ध्वन्यात्मक शब्दाऽसमवायिकारणकाः तृतीयाः॥"<sup>8</sup>**

नैयायिकों में इस विषय में अनेक मत प्रचलित हैं कि शब्द की यात्रा श्रोत्रेन्द्रिय तक कैसे चलती है। कुछ का मानना है कि शब्द हमेशा ही सीधी रेखा में यात्रा करता है। यह विचित्रंग न्याय कहलाता है। एक अन्य न्याय के अनुसार जैसे कदम्ब के फूल की पंखुडियां चारों ओर होती हैं उसी प्रकार शब्द भी बोलने पर चारों ओर फैल जाता है। इसको नैयायिक कदम्बगोलक न्याय कहते एवं मानते हैं।

नैयायिक ध्वन्यात्मक शब्दों की अर्थवत्ता को नहीं मानते हैं कि शब्दों के द्वारा केअवल और केवल ध्वनि का ज्ञान होता है। वर्णनात्मक शब्दों के दो भेद किये जाते हैं- सार्थक एवं निरर्थक। सार्थक वे शब्द होते हैं जो वाक्य व्यवहार द्वारा किसी किसी अर्थ को प्रकट करने में असमर्थ हों। शक्ति विशिष्ट सार्थक शब्द को व्याकरण में पद कहा जाता है। भारतीय भाषा तात्त्विकों ने शब्द के चार भेद बताये हैं क्रमशः रूढ, लक्षक, योगरूढ और यौगिक हैं-

**“रूढ च लक्षक चैव योगरूढ च यौगिकम्।**

**तच्च परैः रूढयौगिकं मन्यतेऽधिकम्॥”<sup>9</sup>**

कुछ व्यक्ति रूढ यौगिक शब्द में अपनी आस्था रखते हैं। जो मिलाकर शब्द की पाँच कोटियाँ बनाता है। उपरोक्त को न्यायसिद्धान्त मुक्तवलि में कुछ इस प्रकार कहा गया है-

**“शक्तं पदम् तच्चतुर्विधम्-क्वचिद्यौगिकं,**

**क्वचिदुदं, क्वचिद्यौगरूढं, क्वचिद्यौगिकरूढम्॥”<sup>10</sup>**

रूढ अथवा परम्परागत शब्द: जब का अर्थ अवयवों के अर्थ से स्वतन्त्र हो तो उसे रूढ शब्द कहा जाता है अर्थात् जो शब्द अर्थ विशेष में रूढ हो जाता है। स्थिर हो जाता है उसे रूढ शब्द कहते हैं। इस शब्द का व्युत्पत्ति से कोई संबंध नहीं होता है जैसे गौए घोड़ाए मनुष्य आदि। ‘गौ’ शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ है “गच्छति इति गवः”। यह अव्युत्पन्न अर्थ कहा जा सकता है अर्थात् अर्थात् सींगए खुरए साम्राए पूँछ आदि से युक्त पशु विशेष। किन्तु अन्य मतानुसार शब्द का यह विशेष अर्थ धीरे धीरे लोक में प्रचलित हो कर धीरे धीरे उसी अर्थ में स्थिर हो गया। इस संदर्भ में शब्द का मूल अर्थ व्युत्पत्तिमूलक लिये जा सकने की संभावना भी बनी रहती है। कहने का अर्थ है कि जहाँ पद के अवयवों के अर्थ की अपेक्षाके बिना ही समुदाय शक्ति से ही वस्तु की प्रतीति हो उसे रूढ शब्द कहा जा सकता है।

**“यत्रावयवशक्ति निरपेक्षया समुदायशक्त्या**

**बुध्यते तदुदम् यदा गोमण्डलदिपदम्॥”<sup>11</sup>**

अर्थात् ‘गो’ शब्द का अर्थ तो गमनशीलता वस्तु तो कोई भी हो सकती है एवं यह तो निश्चित है कि प्रत्येक गमनशील वस्तु के लिये गो शब्द का प्रयोग तो नहीं। किया जा सकता है। इसी प्रकार मण्डलए मण्डपए सरिता आदि शब्द हैं जिनमें अर्थ विपरीतता की संभावना छुपी रहती है परन्तु यत्र विशेष के द्वारा वे किसी निश्चित अर्थ के संदर्भ में प्रयुक्त होने लगे हैं। इन परिस्थितियों में व्युत्पत्ति का कोई विशेष संदर्भ नहीं रहता है।

लक्षक शब्द के द्वारा लक्ष्यार्थ का बोध होना स्वाभाविक एवं आवश्यक है। “गंगायाम् घोषः” इस का अत्यन्त प्रसिद्ध उदाहरण है जिस का अर्थ है “गंगा नदी में घर”। यदि इस पद को इसके रूढार्थ में लिया जाये तो इसमें अर्थ की अपेक्षा अनर्थ होने की अत्यधिक संभावना है और यह पद निश्चित हीए जिस संदर्भ में प्रयुक्त होगाए उसका सौन्दर्य भी विन्ष्ट करेगा ही। अतः यहाँ शब्द की लक्षणा शक्ति का प्रयोग किया जाता है। इससे इस पद का अर्थ निकाला जाता है कि घर गंगा नदी में न हो कर नदी के किनारे पर हैं यहाँ पर यह द्योतित करना उचित ही है कि रूढार्थ में प्रयुक्त हो कर भी शब्द की लक्षणा शक्ति द्वारा एक अन्य अर्थ भी निकाला जा सकता है जो रूढार्थ से पूर्णतया ही भिन्न होता है।

योगरूढ अथवा व्युत्पत्ति परम्परा: किसी भी शब्द को योगरूढ तब कहा जा सकता है जब सम्पूर्ण शब्द का निर्धारित अर्थ उसके अवयवों के अर्थ के ही समान हो अथवा सीधे सीधे से कहा जाये तो वे शब्द जो यौगिक तो होते हैं परन्तु अर्थ विशेष पर आरूढ हो जाते हैं अऔर धीरे धीरे उन्हीं को द्योतित करना आरंभ कर देते हैं। यहाँ व्युत्पत्ति मूलक अर्थ और परम्परा गत अर्थ दोनों ही एक ही वस्तु को इंगित करते हैं। और उनके अर्थों में समरूपता होती है। उदाहरण के लिये ‘कमल’ के अर्थ में पंकज शब्द को लिया जा सकता है।

**“पंक” अर्थात् कीचड और “ड” का अर्थ जन्म लेने वाला अर्थ में है ।**<sup>12</sup>

व्युत्पत्ति मूलक एवं परम्परा गत अर्थों में देखा जाये तो यह स्पष्ट होता है कि “कीचड में पैदा होता है” वही पंकज है अर्थात् दोनों ही संदर्भों

में समानता है। कहने का अर्थ है कि जिन पदों के अवयव शक्ति से प्राप्त अर्थ में ही समुदाय शक्ति भी होती है उन पदों को योगरूढ शब्द कहते हैं-

**“यत्र तु अवयवशक्ति शक्ति विषये समुदायशक्तिरप्यस्ति**

**तद्योगरूढम् यथा पंकजादि पदम्॥”<sup>13</sup>**

पंकज शब्द की समुदाय शक्ति से भी उसी शब्द कमल की प्रतीति होती है अतः इसे योगरूढ शब्द माना गया है। ऐसे प्रसंगों में समुदाय शक्ति से उपस्थित कमल में अवयव अवयव के अर्थ का अन्वय सान्निध्य के कारण हो जाता है।

**“वस्तुस्तुसमुदायशक्त्युपस्थितपदोऽवयवार्थणकजनिकर्तुनर्वयो**

**भवतिसान्निध्यात्॥”<sup>14</sup>**

यौगिक: कोई भी शब्द यौगिक उस समय यौगिक कहा जाता है जब उसमें व्युत्पत्तिमूलक लक्षण विद्यमान हों अर्थात् व्युत्पत्ति की दृष्टि से उसका अर्थ उसी के समान हो अर्थात् यौगिक शब्द अपने यौगिक अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं। इन्हें व्युत्पत्तिमूलक शब्द भी कहा जाता है। इसमें व्युत्पत्तिमूलक अर्थ शब्द के भाग द्वारा निर्धारित होता है अथवा यों कहा जाये तो ये शब्द अपने अवयवों के अतिरिक्त किसी अन्य की ओर संकेत करने में असमर्थ होते हैं। कहने का अर्थ है जहाँ पद अवयवों के अर्थ का ज्ञान के द्वारा पदार्थ की प्रतीति करवाये वह शब्द यौगिक शब्द कहा जा सकता है यथा “पाचक”शब्द।

**“यत्रावयवार्थ एवं बुध्यते तद्यौगिकम् यथा पाचकादिपदम्” ।**<sup>15</sup>

‘पच’ धातु के ‘अक्’ (वुल) प्रत्यय जुड कर बने पद का अर्थ पकाने वाला है। इसी प्रकार एक अन्य शब्द है “दाता” । यहा यह कहना आवश्यक है कि शब्द का अर्थ शब्द के अवयवों पर निर्भर करता है। इस प्रकार शब्द का अर्थ अर्थ व्याकरण अथवा व्युत्पत्ति से जाना जाता है।

रूढयौगिक शब्द: किसी शब्द को रूढ यौगिक उस समय कहा जाता है जब शब्द का अर्थ या तो उस के अवयवों के अर्थ की व्युत्पत्ति द्वारा निकाला जाय अथवा परम्परा प्रयोग द्वारा सम्पूर्ण शब्द से निकाला जाये अर्थात् वे शब्द जो कभी यौगिक अर्थ का बोध करवाये तो कभी रूढार्थ का। समुदाय शक्तिवश रूढ-यौगिक शब्द अपने रूढ अर्थ को ही पदार्थित करते हैं तो वही अपनी अवयव शक्ति शक्ति द्वारा यौगिक अर्थ को भी पदार्थित करते हैं। उदाहरण के तौर पर “उटविद” का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है “बीज का अंकुरण अथवा वृक्षए परन्तु दूसरे ओर इस का अर्थ यज्ञ की बलि के अर्थ में भी लिया जाता है।

**“यत्र यौगिकार्थरूढयर्थयोः स्वातन्त्र्येण बोधस्तद्यौहिकरूढम्”<sup>16</sup>**

के अनुसार ‘मण्डप’ को इसी कडी में उदाहरणार्थ लिया जा सकता है। मण्डप शब्द का वास्तविक अर्थ “शुभ उत्सव पर कपडा आदि बना कर न्याय दर्शन के अनुसार शक्ति सम्पन्न शब्द को ही पद कहा जाता है।<sup>17</sup> और इस प्रकार के शब्द से संकेत होने वाली वस्तु को पदार्थ कहा जाता है। पद का पदार्थ से ज्ञान-बोध और शब्द बोध होता है। पद से अर्थ का बोध होने का अर्थ यह नहीं है कि सभी शब्द सार्थक हैं। यहाँ यह कहना एक आवश्यकता बन जाती है कि केवल कुछ ही शब्दों से नियत अर्थों का बोध होता है। इसको इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि शब्द और अर्थ का एक विशिष्ट प्रार का संबंध होता है और उसी पद से वस्तु विशेष का दर्शन संभव है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसीलिये नियत शब्द से नियत अर्थ का बोध होना ही संभव है। वैयाकरणों का मानना है कि शब्द और अर्थ के मध्य तादात्म्य संबंध होता है और दूसरी ओर मीमांसक इसे वाचक-वाच्य संबंध मानते हैं और उनका मानना है कि सभी पदों से सभी अर्थों का बोध न हो कर विशिष्ट अर्थ का बोध ही संभव है। न्याय दर्शन के अनुसार शब्द के तीन प्रकार के अर्थ हैं। अभिधा शब्द

का मूल स्वरूप और उससे जुड़ी वस्तु के लिये संकेतक शक्ति शब्द में ही निहित होती है-

**“शक्तिश्च पदेन सह पदार्थस्य संबंध”<sup>18</sup>**

संकेतक शक्ति की परिभाषा शब्द और पद में स्थापित संबंध के रूप में की गई है।

**‘शब्दम् पदम्’<sup>19</sup>**

से यही अर्थ सामने आता है। शब्द और अर्थ के मध्य सीधा संबंध है और यह संबंध परम्परागत है।

लक्षणा शब्द की द्वितीय शक्ति है अर्थात् स्वशक्य संबंध अर्थात्पने से संबंधित हो सकने वाला अर्थ।

**“लक्षणाशक्य संबंधस्तात्पर्यानुपपत्ति”<sup>20</sup>**

का अर्थ यही है। इस प्रकार संबंध जो हो सकता है उसी को लक्षणा शक्ति कहा जाता है।

शब्द की तृतीय शक्तिव्यंजना है। इसमें शब्द का संबंध अर्थ से सीधा नहीं होता परन्तु शब्द अपने नित्य नवीन अर्थ को बोधित करवाता है और इसमें रतिभा की आवश्यकता रहती है जो नित्य ही नवीन अर्थों का बोध करवाती है। यहां यह कहना आवश्यक है यहां शब्द की अभिधा एवं लक्षणा शक्तियां कार्य नहीं करती हैं अपितु सीधे कहा जाये तो शब्द और अर्थ का साधारण और विशिष्ट संबंध नहीं रहता अपितु वह किसी अन्य अर्थ को प्रकट करता है।

उपरोक्तानुसार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रत्येक शब्द कं मुख्यार्थ से गौणार्थ भी निकलते हैं। लक्षक योगरूढ शब्दों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि शब्द के प्रधान अर्थ से गौणार्थ के निकलने की संभावना हमेशा से:इ बनी रहती है। यह तो स्पष्ट ही है कि रूढ शब्द के व्यवहार से अर्थ की स्थिरता की जाती है। वैसे उनकी व्युत्पत्ति-मूलक अर्थ लिया जाये तो शब्द के अनेक गौणार्थ निकल सकते हैं परन्तु यह कहना उचित ही होगा कि वागव्यवहार द्वारा शब्द का उचित अर्थ स्थिर करना एक लोक परम्परा है।

मूल अथवा प्रधान अर्थ से शब्द के गौण अर्थ के निकलने की प्रतिक्रिया अथवा अर्थ परिवर्तन की प्रक्रिया के संबंध में अधिक आगे विचार करते हुए इसी क्रम में प्राचिन भाषाशास्त्रियों ने इस क्रिया के चार भेद किये हैं

**“चतुर्भिः प्रकारैस्तमिन् सः इत्येतदभवति-तात्स्थ्यात्,**

**ताद्धर्म्यति ए तत्सामीप्यात् ए तत्साहचर्यादिति ॥”<sup>21</sup>**

अर्थात् तात्स्थ्यात् ए तत्सामीप्य ए तत्साहचर्यात्। तात्स्थ्य का अर्थ है वहां और उसी शब्द में स्थिर और स्थिर होने वाला अथवा ‘तत्’ में स्थित रहने वाला। इसका अर्थ है कि आधार पर आधेय का प्रत्यारोपण। मुख्यार्थ से गौणार्थ निकालने की बात भी कहीं कहीं स्वीकार की जाती है यथा

**“तात्स्थ्यात्तावत्-मंचा हसति ए गिरिर्दहते”<sup>22</sup>**

में इन शब्दों का अर्थ है कि मंच हंसता है और पर्वत दहन होता है। यहाँ यह कहना उचित ही है कि मंच स्वयं तो निर्जीव है एवं क्या वह हंस सकता है? इसी प्रकार पर्वत जल नहीं सकता है। लाक्षणिक प्रयोग से स्पष्ट होता है कि पर्वत पर स्थित पेड़ एवं पौधे आदि वनस्पतियाँ जल रही हैं एवं मंच के पास बैठे व्यक्ति हंस रहे हैं न कि पर्वत जल रहा है अथवा मंच हंस रहा है। ताद्धर्म्य का अर्थ है समानधर्मा का भाव का होना अर्थात् दो अथवा दो से अधिक वस्तुओं में समान धर्म का ज्ञान होना। ऐसी स्थिति में मुख्यार्थ से गौणार्थ निकलते देखा जा सकता है-“ताद्धर्म्य-जटिनं यान्तं ब्रह्मदत्त इत्याह।

ब्रह्मदत्त यानि कार्याणि जटिन्यपि तानि क्रियते इत्यतो जटी ब्रह्मदत्त इत्युच्यते”<sup>23</sup>।

पूर्वोक्त वाक्य में जटी के आने पर ब्रह्मदत्त ऐसा कहा गया है। ब्रह्मदत्त जिन कार्यों को करता है। यहां ब्रह्मदत्त को यद्यपि जटी को समान नहीं

कहा जा सकता है परन्तु यह सामीप्यता का बोध अवश्य करवाता है अर्थात् दोनों के कार्य एक जैसे हैं। इस उदाहरण के अनुसार मुख्यार्थ से गौणार्थ का भी बोध होता है तथा”तत्सामीप्याद्-

**गंगायाम घोसः, कूपे गर्गकुलम्”<sup>24</sup>**

अभिधा वृत्ति के अनुसार गंगा में घर और कुएँ में गर्ग कुल है और लक्षणा वृत्ति के अनुसार “गंगा नदी के किनारे घर एवं कुएँ के समीप गर्ग कुल” होता है।

**“तत्साहचर्यात्- कुन्तान प्रवेशय, यष्टी प्रवेशयेति॥”<sup>25</sup>**

अभिधामूलक दृष्ट से जो निकलता है वह है भालों को भेजो, लाठियां प्रवेश करें। परन्तु लक्षणायुक्त दृष्टि से जो अर्थ निकलता है वह है मालों से युक्त व्यक्तियों को भेजो और लाठियों से युक्त व्यक्ति भेजो।

ऐसे ही प्रसंगों के संबंध में प्राचीन भाषा तात्त्विकों ने विचार करके यह निष्कर्ष निकाला था कि शब्द तो अर्थ में ही निहित रहता है केवल अर्थ में ही बदलाव आता है क्योंकि कहा भी गया है-

**“अर्थ मात्रं विपर्यस्तं शब्द स्वार्थे व्यवस्थितः॥”<sup>26</sup>**

है क्योंकि कहा भी गया है कि मुख्यार्थ तो ज्यों का त्यों बना रहता है परन्तु गौणार्थ समयानुसार परिवर्तनशील रहता है। यह स्पष्ट है कि शब्द की लक्षणा और व्यंजना शक्ति से ही विविध प्रसंगों में विभिन्न गौणार्थ भिन्न भिन्न बनते जाते हैं।

इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए शक्ति ग्रहण की बात करते हुए यह स्पष्ट होता है कि गौणार्थ शक्तिग्रहण के आठ साधन हैं यथा १. व्याकरण, २. उपमान, ३. कोष, ४. आप्तवाक्य, ५. व्यवहार, ६. वाक्य शेष, ७. विवृति विवरण, ८. प्रसिद्ध पद का सान्निध्य। “शक्तिग्रहं व्याकरणेपमानकोषाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्चा।

**वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सानिध्यात् सिद्धपदस्य वृद्धाः॥”<sup>27</sup>**

व्याकरणः शब्द की धातुए प्रकृति प्रत्यय आदि का निश्चय व्याकरण से होता है।

सामान्यतः व्याकरण के नियमों का पालन सर्वत्र होता है परन्तु कहीं कहीं अर्थ की उपयुक्तता के अभाव में उस अर्थ की शक्ति को भी त्याग दिया जाता है। “धातुप्रकृति प्रत्ययादीनां शक्तिग्रहो व्याकरणाद् भवति। क्वचित्सति बाधके त्यज्यते” का अर्थ कुछ इन्हीं संदर्भों में समझा जा सकता है।

उपमानः शक्ति ग्रहण का दूसरा साधन नैयायिक उपमान (प्रमाण) को माना जाता है।

सादृश्य ज्ञान को उपमान कहा जा सकता है। इसे नीलगाय के ज्ञान के आधार पर समझा जा सकता है -

**ग्रामीणस्य प्रथमतः पश्यति गवयादिकम्।**

**सादृश्यधीर्गवादीनां या स्यात्सा करणा”<sup>28</sup>**

ग्रामीण के पृच्छने पर कि नीलगाय कैसी होती है को अरण्यवासीए जिसने जिसने नीलगाय देखी हैए बताता है कि गौ के समान जिसका पिण्ड हो वही गवय पद का वाच्य है। इसके पश्चात् ग्रामीण ने नीलगाय देखी तो गवय पद में जो सदृश उसे प्रत्यक्ष हुआ वही उपमान का कारण हुआ।

कोषः नैयायिकों के अनुसार शक्तिग्रहण का एक अन्य साधन कोष है। परन्तु यहां यह भी स्पष्ट कारना उचित है कि यदि कहीं कोई दोषरूप में बाधक की उपस्थिति हो तो वहां उस शक्ति को अस्वीकार किया जाता है। उदाहरणार्थ कोष में “गुणशुक्लादयः पुंसि गुणि लिंगस्तु तद्गति” का नीलादि पदों की नीलादि रूप में विशिष्ट रूप में शक्ति प्रतिपादित की गयी है परन्तु साथ ही लाघव में नीलादि पदों की शक्ति नीलादि रूप में स्वीकार की गई है यथा-

“एष कोषादपि शक्तिग्रह सति बाधकेक्वचित्यज्यते। यथा नीलादि पदानाम् नीलरूपादौ नीलादि विशिष्टे च शक्ति कोषे न व्युत्पादिता

तथापि

**लाघवाग्नीलादावेव शक्ति नीलादि विशिष्टे तु लक्षणा<sup>29</sup>**

आप्तवाक्यः आप्तवाक्य भी शक्ति प्राप्ति का एक अन्य साधन माना गया है। आप्तवाक्य का अर्थ है प्रमाणित वाक्य अथवा यथार्थ वक्तृत्व। उदाहरणार्थ "कोकिल रूप पिक पद की शक्ति निश्चित करता है यथा-

**"एवमाप्तवाक्यादपियथा कोकिल पिकपद वाच्य इत्यादि शब्दासिकादि शब्दानां कोकिले शक्तिग्रहः"<sup>30</sup>**

व्यवहारः नैयायिकों का मानना है कि व्यवहार द्वारा भी शक्ति ग्रहण होती है। उदाहरण के लिये यदि कोई व्यक्ति दूसरे को कुछ कहता है तो दूसरा उसे सुन कर जैसे भी कार्य में प्रवृत्त होता है उसी के आधार पर अन्य व्यक्ति उसे ही देख एवं सुन कर वैसे ही व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं।

**एवं व्यवहारादपि<sup>31</sup>**

का यही अर्थ है।

वाक्यशेषः नैयायिक वाक्यशेष को अन्य प्रकार से भी शक्ति ग्रहण का स्रोत मानते हैं। जब किसी पद के दो र्थ संभावित हों तो उनमें वास्तविक अर्थ वाक्यशेष से ग्रहीत होता है। उदाहरणार्थ "यवमयश्चरुर्भवति" में यव पद की शक्ति (जौ) यवात्र में है।

**एवं वाक्यशेषादपि शक्ति ग्रहः।**

**यत्रायवमयश्चरुर्भवतीत्यत्र यवपद दीर्घशूक विषये आर्याणाम् प्रयोगे कडगौ तु म्लेच्छानाम्<sup>32</sup>**

विवरणः विवरण द्वारा भी शक्ति ग्रहण भी माना जाता है। समानान्तर पद से उसके अर्थ के कथन को विवरण कहा जाता है। उदाहरण के लिये "घटोऽस्ति" के "कलशोऽस्ति" के द्वारा घट पद की कलश में शक्ति निश्चित होती है।

प्रसिद्ध पद का सान्निध्यः नैयानिक मानते हैं कि कोई भी शब्द प्रसिद्ध पद के सान्निध्य से शक्ति ग्रहण करने में समर्थ होता है यथा सहकारतरु के ऊपर कोयल मधुर शब्द करती है। यहां सहकारतरु एक प्रसिद्ध पद है। इसी पद के द्वारा 'पिक' शब्द की शक्ति 'कोयल' निश्चित होती है।

**एवं प्रसिद्धपदस्य सान्निध्यादपि शक्तिग्रहः।**

**यथा शकारतरौ मधुरं पिकोरीतीत्यादौपिकशब्दस्य कोकिले शक्तिग्रह इति<sup>33</sup>**

का अर्थ इन्ही अर्थों में संभावित है।

**सन्दर्भ संकेत**

1. वात्सायन भाष्य २.२.६८
2. न्याय तात्पर्य दीपिका २.२.६९
3. न्यायस्तु ईश्वरेच्छा न शक्ति किन्विच्छैवः न्याय सिद्धान्त मुक्तावली
4. वाक्यपदीयम् २.२.३७
6. शब्द शक्ति प्रकाशिका २.२.६९
7. भाषा परिच्छेद प. २४८
8. वही प. ४९
9. शब्दशक्ति प्रकाशिका: १६
10. न्यायसिद्धान्त मुक्तावलि प. ३१५
11. वही
12. पाणिनी अष्टाध्यायी ३.२.५७
13. न्याय सिद्धान्तमुक्तावलि प. ३१६
14. वही प. ३१७
15. वही प. ३१५
16. न्यायसिद्धान्त मुक्तावली प. ३१९
17. भारतीय भाषा दर्शन: एक अध्ययन: प. ९४
18. न्यायसिद्धान्त मुक्तावली प. २९३
19. न्यायसिद्धान्त मुक्तावली प. ३१५
20. न्यायसिद्धान्त मुक्तावली प. ३१९
21. महाभाष्य: १.१४.१.२
22. पूर्वोक्त
23. पूर्वोक्त 33ण् पूर्वोक्त पण् ३०९.१०
24. पूर्वोक्त
25. महाभाष्य
26. पूर्वोक्त २.२५७
27. न्यायसिद्धान्त मुक्तावली प. २९६
28. पूर्वोक्त प. ७९
29. पूर्वोक्त प. ३०२.३०३
30. पूर्वोक्त प. ३०३
31. पूर्वोक्त प. ३०३
32. पूर्वोक्त प. ३०७.०८
33. पूर्वोक्त प. ३०९.१०